श्रीमज्जिनेश्वरसूरि–प्रणीतम्

श्रीमुनिचन्द्रसूरिरचित–विवृत्युपेतम्

छन्दोनुशासनम्

म. विनयसागर

क्षीरस्वामी ने छन्द और छन्दस् पदों की नियुक्ति छद धातु से बतलाई है । अन्य आचार्यों के मत से छन्द शब्द 'छदिर् ऊर्जने, छदि संवरणे, छदि आह्लादने दीप्तौ च, छद संवरणे, छद अपवारणे' धातुओं से निष्पन्न है । व्यावहारिक दृष्टिकोण से छन्द अक्षरों के मर्यादित प्रक्रम का नाम है । जहाँ छन्द होता है वहीं मर्यादा आ जाती है । मर्यादित जीवन में ही साहित्यिक छन्द जैसी स्वस्थ–प्रवाहशीलता और लयात्मकता के दर्शन होते हैं । भावों का एकत्र संवहन, प्रकाशन तथा आह्लादन छन्द के मुख्य लक्षण है । इस दृष्टि से रुचिकर और श्रुतिप्रिय लययुक्त वाणी ही छन्द कही जाती है – 'छन्दयति पृणाति रोचते इति छन्दः ।' वैदिक संहिता और काव्यशास्त्रो में विशुद्ध और लयबद्ध उच्चारण छन्दशास्त्र के ज्ञान से ही सम्भव है । वेद के षडङ्ग में छन्द को भी ग्रहण किया गया है । छन्द के प्राचीन आचार्य शिव और बृहस्पति माने जाते हैं । संस्कृत छन्दशास्त्र में आचार्य पिङ्गल द्वारा रचित पिङ्गल छन्दसूत्र ही प्राचीनतम माना जाता है । कुछ विद्वान् पिङ्गल को पाणिनी के पूर्ववर्ती मानते हैं और कुछ विद्वान् पाणिनि का मामा मानते हैं।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर जैसलमेर ग्रन्थोद्धार योजना फोटोकॉपी नं. २३१, प्लेट नं. ७, पत्र १३ ताड़पत्रीय प्रति १२ वीं सदी का अन्तिम चरण और १३ वीं शताब्दीं का प्रथम चरण की है । इसी फोटोकॉपी के आधार से मैंने दिसम्बर १९७० में इसकी प्रतिलिपि की थी ।

१२वीं–१३वीं शताब्दी की छन्दोशासन की प्रति होने के कारण उस शताब्दी पर दृष्टिपात करते हैं तो सुविहितपथप्रकाशक और खरतरविरुदधारक श्रीजिनेश्वरसूरि के अतिरिक्त अन्य कोई इस नाम का आचार्य दृष्टिगत नहीं होता । साथ ही वादी देवसूरि के गुरु सौवीरपायी श्रीमुनिचन्द्रसूरि के अतिरिक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य कोई इस नाम का आचार्य दृष्टिगत नहीं होता ।

श्रीजिनेश्वरसूरि के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि प्राचीन साहित्य में श्वेताम्बर समाज का दर्शन और कथा साहित्य आदि पर कोई ग्रन्थ नहीं है । दुनिया के समक्ष रखने के लिए इन ग्रन्थों का निर्माण आवश्यक है । इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर श्वेताम्बर परम्परा का प्रथम दर्शन ग्रन्थ **प्रमालक्ष्म**, कथा साहित्य में **लीलावतीकहा** और **कथाकोष** आदि की रचना की । अपने सहोदर एवं गुरुभाई श्रीबुद्धिसागरसूरि को इस बात के लिए तैयार किया कि तुम व्याकरण आदि ग्रन्थों पर नवीन निर्माण करो । उन्होंने भी बुद्धिसागर/पंचग्रन्थी व्याकरण की रचना की । श्रीगुणचन्द्रगणि (देवभद्राचार्य) ने महावीरचरियं प्राकृत (रचना संवत् ११३९) में प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रशस्ति देते हुए लिखा है कि जिनेश्वरसूरि के बन्धु और गुरु भ्राता बुद्धिसागरसूरि ने व्याकरण और नवीन छन्दशास्त्र का निर्माण किया था[१] ।

अन्नो य पुन्निमायंदसुंदरो बुद्धिसागरो सूरी ।
निम्मवियपवरवागरणछन्दसत्थो पसत्थमई ॥५३॥

व्याकरण, पञ्चग्रन्थी और बुद्धिसागर के नाम से प्रसिद्ध है । छन्दशास्त्र प्राप्त नहीं होता है । सम्भवत है किसी भण्डार में उपेक्षित पड़ा हो । सम्भवतः बुद्धिसागरसूरि ने संस्कृत में पिङ्गलछन्दसूत्र के आधार पर ही छन्दशास्त्र लिखा हो और जिसमें मातृका, वर्णिक, अर्द्धसम, विषम और प्रस्तार आदि का वर्णन हो । उस अवस्था में जिनेश्वराचार्य ने प्राकृत आगम साहित्य का अध्ययन करने की दृष्टि से इस छन्दोनुशासन की रचना की है । जिसमें केवल गाथा और उसके अवान्तर भेद और प्रस्तार संख्या ही निहित है । वर्णिक साहित्य का इसमें उल्लेख नहीं है ।

टीकाकार

टीकाकार का नाम मुनिचन्द्रसूरि प्राप्त होता है । ये मुनिचन्द्रसूरि और सूक्ष्मार्थविचारसार प्रकरण के चूर्णिकार श्रीमुनिचन्द्रसूरि एक ही हों, ऐसा प्रतीत

१. गुणचन्द्र गणि (देवभद्रसूरि) रचित महावीर चरित्र, पत्र ३४०; प्रकाशन देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्थान, सूरत, संवत् १९८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है । श्रीमुनिचन्द्रसूरि बृहद्गच्छीय सर्वदेवसूरि के प्रशिष्य और श्री यशोभद्रसूरि के शिष्य थे । आपको सम्भवतः श्रीनेमिचन्द्रसूरि ने आचार्य पद प्रदान किया था । आपके विद्यागुरु पाठक विनयचन्द्र थे । आप न केवल असाधारण विद्वान तथा वादीभपंचानन थे, अपितु अत्युग्र तपस्वी और बालब्रह्मचारी भी थे । आप केवल सौवीर (कांजी) ही ग्रहण करते थे, इसी कारण से आप 'सौवीरपायी' के नाम से प्रसिद्ध हुए । आपके अनुशासन में ५०० साधु और साध्वियों का समुदाय निवास करता था । तत्समय के प्रसिद्ध वादीकण्ठकुद्दाल आचार्य वादी देवसूरि जैसे विद्वान् के गुरु होने का आपको सौभाग्य प्राप्त था । गुर्जर, लाट, नागपुर इत्यादि आपकी विहारभूमि थी । ग्रन्थ रचनाओं में प्राप्त उल्लेखों को देखते हुए आपका पाटण में अधिक निवास हुआ प्रतीत होता है । आपका स्वर्गवास सं० ११७८ में हुआ है ।

आप तत्समय के प्रसिद्ध और समर्थ टीकाकार तथा प्रकरणकार हैं। आपके प्रणीत टीका-ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है :

१. देवेन्द्र-नरकेन्द्र-प्रकरण वृत्ति	सं० ११६८	पाटण	चक्रेश्वराचार्य संशो.
२. सूक्ष्मार्थविचारसार प्र० चूर्णी	सं० ११७०	आमलपुर	शि. रामचन्द्र सहायता से
३. अनेकान्तजयपताकावृत्त्युपरि टिप्पन	सं० ११७१		
४. उपदेशपद टीका	सं० ११७४		(नागौर में प्रारम्भ और पाटण में समाप्त)

५. ललितविस्तरापञ्जिका
६. धर्मबिन्दु वृत्ति
७. कर्मप्रकृति टिप्पन

प्रकरणों की तालिका निम्न प्रकार है :

१. अंगुल सप्तति
२. आवश्यक सप्तति

१०. मोक्षोपदेश पञ्चाशिका
११. रत्नत्रय कुलक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. वनस्पति सप्तति
४. गाथाकोष
५. अनुशासनाङ्कांकुशकुलक
६. उपदेशामृतकुलक
७. उपदेश पञ्चाशिका
८. धर्मोपदेश कुलक
९. प्राभातिक स्तुति
१२. शोकहरोपदेशकुलक
१३. सम्यक्त्वोत्पादविधि
१४. सामान्यगुणोपदेशकुलक
१५. हितोपदेश कुलक
१६. कालशतक
१७. मण्डलविचार कुलक
१८. द्वादशवर्ग

आपने नैषधकाव्य पर भी १२००० श्लोक प्रमाणोपेत टीका की रचना की थी किन्तु दुर्भाग्यवश आज वह प्राप्त नहीं है ।

वर्ण्य विषय

प्रथम पद्य में गाथा छन्द के लक्षण का वर्णन है । दूसरे पद्य में गुरु और लघु का वर्णन करते हुए दीर्घाक्षर, बिन्दुयुक्त, संयोग, विसर्ग और व्यञ्जन आदि का उल्लेख किया गया है । तीसरे पद्य में चतुष्कल (चार मात्राएं) के प्रस्तार का वर्णन किया गया है । चौथे पद्य में उनके अपवाद का भी वर्णन किया गया है । पांचवें, छठे एवं सातवें पद्य में गाथा के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरण में कितनी मात्राएं होती हैं, उसका विवेचन है । आठवें पद्य में गाथा के अतिरिक्त अन्य छन्दों का वर्णन किया गया है । नवमें, दशमें एवं ग्यारहवें पद्य में विपुला, चपला, मुखचपला, जघनचपला के लक्षण प्रतिपादित किये गए हैं । उसके पश्चात् गाथा १३ से १९ तक में गाथा/आर्या के अतिरिक्त विगाथा/उद्गीति, उद्गाथा/उद्गीति, गाहिनी, स्कन्धक आदि के लक्षण देकर लघु और दीर्घ कितने होते हैं, इनकी संख्या बतलाई है । तत्पश्चात् उन-उन छन्दों के प्रस्तारों की संख्या प्रतिपादित की गई है । २३वें पद्य में ग्रन्थकार ने अपना नाम जिनेश्वरसूरि देकर इस ग्रन्थ को पूर्ण किया है ।

इसकी मूल भाषा प्राकृत है । कुल २३ गाथाएँ हैं । इस पर श्रीमुनिचन्द्रसूरि ने श्रीअजित श्रावक का उत्साह देखकर इस ग्रन्थ की टीका की रचना की । टीका की रचना संस्कृत में है । आगमों में प्रयुक्त छन्दों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का ज्ञान और विवेचन करने के लिए यह छन्दोनुशासन ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है ।

★

श्रीजिनेश्वराचार्यविरचितं श्रीमुनिचन्द्रसूरि प्रणीत व्याख्योपेतम्

छन्दोनुशासनम्

ॐ नमः सर्वज्ञाय ।

नत्वा सर्वसमीचीनं वाचागोचरवाजिनम् ।
जिनं जैनेश्वरं छन्दो विवृणोमि यथामति ॥१॥

इहाचार्यः कलुषकालप्रतापलुप्ताद्भुतद्रुतमतिविभवान् अत एव बहुबुद्धिबोध्यपिङ्गलादिप्रणीतछन्दोविचित्तिशास्त्रावधारणाप्रवणान्तःकरणान् भूयसोऽद्यतनजनाननुग्रहीतुं गाथाछन्दस्य प्रायः सकलबालाबलादिजनवचनव्यवहारगोचरतया बहूपयोगीत्यवेत्य तदेव संक्षेपतो वक्तुकामो मङ्गलाभिधेयाभिधायिकामिमामादावेव गाथामाह–

नमिऊण छन्दलक्खणधेणुं सव्वन्नुणो वरं वाणिं ।
गाहाछन्दं वोच्छं लक्खणलक्खेहिं संजुत्तं ॥१॥

इह विघ्नोपशमननिबन्धनतया शिष्टसमाचारतया पूर्वार्द्धेन मङ्गलं प्रेक्षावत्प्रवृत्त्यङ्गतया चोत्तरेणाभिधेयं सम्बन्धप्रयोजने च सामर्थ्यादुक्ते इति समुदायार्थः । अवयवार्थस्तु–नत्वा–प्रणम्य, कां ? **वाणिं**–भारतिं(तीं) । किंविशिष्टां ? **छन्दोलक्खणधेणुं** छन्दसां–गाथाश्लोकवृत्तादीनां वचनरचनाविशेषाणां लक्षणं तत्स्वरूपाभिधायकं वचनं लक्ष्यते असाधारणधर्माभिधानेन विपक्षविविक्तं लक्ष्यमनेनेति कृत्वा छन्दोलक्षणं तस्य धेनुरिव–पयःप्रसविनीं गौरिव छन्दोलक्षणधेनुस्तां । एषा चाऽविशिष्टा पुरुषकर्तृकाऽकर्तृकाऽपि कस्यचिन्मतेन वाणी स्यात् तद्व्यवच्छेदार्थमाह–**सर्वज्ञस्य**–सर्वमतीतादि ज्ञातवान् जानाति ज्ञास्यति चेति **सर्वज्ञस्तस्य**, तत्प्रणीतामित्यर्थः । अत एव **वरां**–प्रशस्यां परां वा प्रकर्षवतीमन्यस्यास्त्वनाप्तप्रणीतत्वेन विसंवादिनीत्वस्यापि सम्भवाद् अपौरुषेयत्वेन च । वर्ण्यते–भण्यते इति वाणी, ततः पुरुषव्यापारानुगतात्मरूपत्वेन स्वलक्षणस्याप्यनुपपत्तेर्वरत्वपरत्वयोरसम्भव इति । अत्र छन्दोलक्षणधेनुमिति विशेषणेनाऽस्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छन्दोलक्षणप्रकरणस्य तत्प्रस्तुतत्वेन प्रामाण्यमाह-**गाथाछन्दो वक्ष्ये** । गीयत इति गाथा वक्ष्यमाणलक्षणा तस्याश्छन्दो-रचनाविशेषो गाथाछन्दस्तद् वक्ष्ये-अभिधास्ये । किंविशिष्टमित्याह-**लक्षणलक्ष्याभ्यां**, लक्षणं-उक्तस्वरूपं लक्ष्यं च लक्षणगम्योऽर्थः, ताभ्यां युक्तं-संगतमिति । इह नत्वा वाणीमिति मङ्गलं, गाथाछन्दोभिधेयमभिधानं त्विदमेव प्रकरणमभिधाना-भिधेयलक्षणश्च सम्बन्धः प्रयोजनं च कर्तुरनन्तरं सत्त्वानुग्रहः, श्रोतुश्च प्रकरणाधिगमः, परम्परं च द्वयोरपि मुक्तिरिति गाथार्थः ॥१॥

इदानीं प्रकृतार्थोपयोगिनीं संज्ञां परिभाषां च तावदाह-

दीहक्खरं सबिंदुं संजोगविसग्गवंजणपरं वा ।
गाहादलमंतिमं च गुरुं वंकं दुमत्तं च ॥२॥

दीहत्ति । विभक्तिलोपाद् दीर्घं, न क्षरति-न चलति प्रधानत्वादक्षरं स्वरसतया विशिष्टमपि स्याद् अतो दीर्घमिति विशेषणादक्षरं, ह्रस्वपञ्चकवर्जिता शेषस्वरा, ''नित्यं सन्ध्यक्षराणि दीर्घाणी''ति वचनात् सन्ध्यक्षराणामपि दीर्घत्वाद् । **गुरु वक्रं द्विमात्रं च** भवतीति सर्वत्र सम्बन्धः । तथा **सबिन्दुं**-सानुस्वारमक्षरमिति सामान्यानुवृत्तावपि ह्रस्वमिति सर्वत्रापि क्रियते, दीर्घस्य पृथगेव गुरुत्वादिभणनेन सबिन्दुत्वादेरनुपयोगात् । तथा **संयोगविसर्गव्यञ्जनपरं वा** संयोगश्च-द्व्यादिव्यञ्जनानां मेलकः, विसर्गश्च प्रतीतो, व्यञ्जनं च ककारादि, संयोग-विसर्गव्यञ्जनानि परे यस्मात् तत्तथा । वाशब्दः समुच्चये । तथा **गाथादलमंतिमं** च । मकारोऽलाक्षणिकः । गाथोक्तरूपा तस्या दले पूर्वापररूपे तयोरन्तिमं-पर्यन्तवर्त्ति ह्रस्वमप्यक्षरं, किमित्याह **गुर्विति** । गुरुसंज्ञं वक्रं रचनायां द्विमात्रं च मात्रागणनायां परिभाय(व्य)ते । अत्र च प्राकृते णादोतो(ऐदौतो) विसर्गव्यञ्जन-परत्वस्य चानुपयोगे आर्याऽपि गाथासदृशी भवतीति वक्ष्यमाणत्वादायत्यामु-पयोगसम्भवेनोपन्यास इति गाथार्थः ॥२॥

साम्प्रतमविशिष्टाक्षरसंज्ञापरिभाषे अधिकृतछन्दत्रययोग्यं अथ(कल्प)-पञ्चकस्वरूपं च विभणिषुराह-

लहु य पउणेक्कमत्तं सेसं कप्पा य पंच चउमत्ता ।
दो अंत मज्झ आई गुरवो चउ लहु य नायव्वा ॥३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघ्विति- लघुसंज्ञः, चकारः समुच्चये भिन्नक्रमश्च, **प्रगुणैकमात्रं** च प्रगुणं-ऋजुस्थापनायामेकमात्रं च मात्रागणनायां पश्चाद् विशेषणसमासः । किं तदित्याह-**शेष**मिति दीर्घमबिन्द्वाद्यक्षरादन्य भवतीति, **कल्पाश्च पञ्च चतुर्मात्रा** इति, कल्प्यन्ते विरच्यन्ते इति कल्पा अंशकाश्चकारः पुनरर्थे, पञ्चेति संख्यया। चतस्रो मात्रा येषु ते तथा । तानेव स्वरूपतो व्यनक्ति - **द्व्यन्तमध्यादिगुरवः चतुर्लघुश्च ज्ञातव्या** इति, द्वयोरन्ते, मध्ये आदौ च यथासम्भवं गुरुर्गुरुश्च येषां ते, तथा चत्वारो लघवो यत्र स, तथा विंभक्तिलोपश्च प्राकृतत्वात् । चकारा अनुक्तसमुच्चये ज्ञातव्या बोद्धव्या । इदमुक्तं भवति, एकस्तावद् द्विगुरुरन्यो अन्तगुरुश्चतुर्मात्रत्व-नियमाच्चादौ द्विलघुपरो, मध्यगुरुराद्यन्तयोरेकैकलघुस्तदपर आदिगुरुरन्तद्विलघुश्चेत्येवं चत्वारः कल्पाश्चतुर्लघुश्च पञ्चम एत एव चतुर्मात्रागाथायां प्रयुज्यन्त इति गाथार्थः । स्थापना-द्विगु० ऽ ऽ, अन्त्यगु० । । ऽ, मध्यगु० । ऽ ।, आदिगु० ऽ । ।, चतुर्लघु । । । । ॥३॥

उक्तामेव गुरुसंज्ञां क्वचिदपवदितुमाह-

भत्तीए जिणाणं कम्माइं गलंति कुगइओ नासंति ।
पउबिंदू दीहपरा लहु य कत्थइ पयंते ॥४॥

पश्च-पकारश्च उश्च-उकारो बिन्दुश्च-बिन्दुमान् तस्य केवलस्याऽसम्भवात् पउबिन्दवो गुरवोऽपि लघवो भवन्ति । किंविशिष्टा ? दीर्घात्पराः । किं सर्वत्र नेत्याह-कुत्रापि लक्ष्यानुसारेण पदान्ते, विभक्त्यन्तं पदं, तदन्त इत्यर्थः । अयं चाऽर्थः-पूर्वार्द्धेन लक्ष्यरूपतयोक्तस्तदर्थश्चाऽयं-भक्त्योचितकृत्यकरणरूपया, केषां जिनानां-अर्हतां । किमित्याह-कर्माणि गलन्ति कर्माणि-ज्ञानादीनि (ज्ञानावरणीयादीनि) । अबन्धपरिणामतया भक्तिमतामेव जीवप्रदेशेम्यः पृथग् भवन्ति । यदि कथञ्चित् कालसंहननादिबलविकलतया निखिलकर्ममलो न गलति ततः किमित्याह - कुगतयो नरक-तिर्यक्-कुमानुषत्व-कुदेवत्वलक्षणा नश्यन्ति। अपुनर्भावेन । सर्वदर्शिनामपि दर्शनपथमवतरन्तीति ॥४॥

इह गाथाया द्वे अर्द्धे, प्रथमार्द्धमितरश्च, तत् प्रथमार्द्धस्वरूपं वक्तुकाम आह-

पढमद्धे सत्त चउमत्ता होंति तह गुरू अंते ।
नो विसमे मज्झगुरू छट्ठो अयमेव चउ लहुया ॥५॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमार्द्धे प्रतीते **सप्तेति** संख्या अंशाः गणाः कल्पा इत्यनर्थान्तरम् । किंविशिष्टाः ? **चातुर्मात्रा** उक्तरूपा भवन्ति । **तथा गुरुः** गुरुसंज्ञमक्षरमन्ते प्रथमार्द्धस्यैव भवतीति । **नो** नैव, **विषमे** - विषमसंख्यास्थाने प्रथमतृतीयादिके। **मध्यगुरु**रुक्तरूपोंऽशको भवतीति गम्यते । **षष्ठः** षष्ठस्थानवर्ती **अयमेव** मध्यगुरुरेव भवन्तीति विषमस्थापने । चतुः-मध्यगुरुकल्परहिताश्चत्वारः कल्पास्समे तद्द्वितीयचतुर्थलक्षणेन सहिता, एवं पञ्चषष्ठस्तद्विकल्पो चेति गाथार्थः ॥५॥

उक्तं प्रथमार्द्धस्वरूपं द्वितीयस्य तद्वक्तुमाह-

बीयद्धे वेस कमो छट्ठंसो नवरमेगमत्तो उ ।
अज्जा वि गाहसरिसा नवरं सा सक्कयनिबद्धा ॥६॥

द्वितीयं च तदर्द्धं च द्वितीयार्द्धं, तत्राऽविकृतगाथाया एवाऽपिशब्दः पूर्वार्द्धक्रमापेक्ष **एष** पूर्वार्द्धविषयक्रमः परपाटिः । यदुत सप्तांशाः चतुर्मात्रा इत्याद्यनन्तरोक्तविशेषमाह-प्रथमार्द्धात् द्वितीयार्द्धे अयं विशेषो यदुत षष्ठोंऽश एकमात्रस्तु एवकारार्थस्ततश्चैकत्र एव । सामान्येन यदेव गाथालक्षणमार्याया अपि तदेवेति प्रसङ्गत एव लाघवार्थमार्यालक्षणमतिदेष्टुमत्तरार्द्धमाह-**आर्याऽपि** गाथासदृशी, न केवलं गाथा गाथेव दृश्यते किन्त्वार्याऽपि सर्वलक्षणसाधर्म्यात् । यद्येवं-गाथायाः क इवाऽऽर्यायां विशेष इत्याह-नवरं केवलं सा आर्या संस्कृतनिबद्धा-संस्कृतेन भाषाविशेषरूपेण निबद्धा रचिता गाथा न तथेत्यनयोर्विशेषः ॥६॥

सामान्येन गाथालक्षणमुक्त्वा शेषविशेषेषु पदपाठविशेषमाह-

चउलघुछट्ठे बीया सत्तमपढमा उ हवइ पयपढमं ।
पुव्वद्धे पच्छद्धे पंचमठाण पढमया उ एव ॥७॥

चतुर्लघुश्चासौ षष्ठश्च तत्र **द्वितीयाल्लघोः सप्तमे** चतुर्लघावेव **प्रथमाल्लघो**स्तत आरभ्य इत्यर्थः, **भवति**-प्रवर्तते **पदपठनं**-पदस्योक्तरूपस्य पठनं भणनमित्यर्थः । **पूर्वार्द्धे पश्चार्द्धे** प्रतीतरूप एव, **पंचमठाणे** विभक्तिलोपश्च प्राग्वदविकृतत्वात् । चतुः-चतुर्लघावेव किमित्याह प्रथमकाल्लघोः पदमिति पदपठनं भवतीत्यनुवर्तते । इदमुक्तं भवति-यदा गाथायाः प्रथमार्द्धे षट्चतुर्थलघुरंशको भवति तदा द्वितीयलघोः पदप्रारम्भो, अस्मिन्नेव सप्तमे प्रथमाद्वितीये पुनरर्द्धे यदि पञ्चमश्चतुर्लघुस्तदा प्रथमादेव पदप्रवृत्तिः, शेषेषु चतुर्लघुषु पुनः सम्भवत्स्वपि न पदपाठनीया त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति गाथार्थः ॥७॥

उक्तं सामान्यतो गाथालक्षणमधुना यद्विशेषाद्यविशिष्टानामिका गाथा भवति इति गाथाष्टकेन तदाह–

सामण्णेसा गाहा विरामअंसयवसाउ भेया सिं ।
पढमंसतिए विरई दोसु वि अद्धेसु सा पत्था ॥८॥

सामान्या–अविवक्षितविशेषा **एषा**–अनन्तरोक्तलक्षणा गाथा प्रतीता; **विरामांशकवशात्**–विरामस्य–विरतेरंशकस्य च–गणस्य वशादपेक्षणाद् **भेदा**–विशेषा भवतीति गम्यते । **आसामिति** गाथानां, सामान्यगाथाविकारेऽपि विशेषापेक्षया बहुवचनं, सामान्य–विशेषयोः कथञ्चिदभेदादिति । **प्रथमांसकत्रिके**–**द्वयो**रपि पूर्वापररूपयोः प्रथमगणत्रिके यस्या **विरतिः** विरामांशो न भवति **सा** एवंरूपा गाथा **पथ्या** पथ्येत्यभिधाना भवतीति गाथार्थः ॥८॥

विउलाहिजणविस्सामया गुरूणंतरे उ मज्झगुरू ।
बीउ चउत्थउ अंसउ उ सा सव्वउ चवला ॥९॥

विपुलेति, विपुलाभिधाना गाथा भवतीति गम्यते । किंविशिष्टा ? **अधिकजनविश्रामजा**ऽधिकजनो वा पूर्वोक्तगणस्याऽपेक्षया यो विश्रामो विरतिस्तस्माज्जाताधिकजनविश्रामजोक्ता विपुला गाथा । शेषेण सर्वतश्चपलामाह । **गुलंरुणाः(गुरूणंतरे)** पूर्वापरांसकचरमाद्ययोरक्षरयोरन्तरे मध्ये तुरेवकारार्थः, ततोऽन्तर एव **मध्यगुरुर्म**ध्ये गुरुर्यस्य स, तथांऽशको यस्याः स्यादिति गम्यते । किंविशिष्टा ? द्वितीयश्चकारस्य लुप्तनिर्दिष्टत्वात् चतुर्थकश्चांऽशको गणः, तुः पुनरर्थे भिन्नक्रमश्च, द्वयोरप्यंशयोः स्यात्, सा पुनरेवं लक्षणा **सर्वतश्चपला** गाथाविशेषा भवतीति गाथार्थः ॥९॥

पढमे दलंमि नीसेसलक्खणं केवलं तु चपलाए ।
बीए पुण सामण्णं गाहा सा होइ मुहचवला ॥१०॥

यस्याः स्यादिति गम्यते । **प्रथमे दले** अर्धे **निःशेषं** च **लक्षणं केवलं शुद्धं**, तुरेवकारार्थः भिन्नक्रमः, **चपलाया** एव । द्वितीये का वार्त्ता ? इत्याह–द्वितीयेपुनरर्द्धे इत्यनुवर्तते, **गाथासामान्यं** सामान्यगाथालक्षणमित्यर्थः । **सा** किमित्याह–भवति **मुखचपला**–मुखचपलाभिधाना गाथा भवतीति गाथार्थः ॥१०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीयद्धे चवलालक्खणम्मि जघणचवला भवे सा उ ।
चवलव्व तिप्पयारा विरामउ होइ विउला वि ॥११॥

द्वितीयार्द्धे पश्चिमदलेऽधिकृतगाथाया एव **चपलालक्षणे** द्वितीयचतुर्थांवंशकौ गुरुमध्यगौ स्वयं च मध्यगुरू यदि भवतः । एवंलक्षणं किमित्याह-**जघनचपलेति**-जघनचपलाभिधाना भवेत् स्यात् । **सा तु** सा पुनर्यथेयं सर्वतोमुखजघनविशेषणाविव चपला तथा विपुलाऽपि स्यात् । [कथं?] इत्याह-**चपलेव त्रिप्रकारा**-त्रिभेदा विरामतः विरतिमपेक्ष्य भवति, **विपुलापि** । इदमुक्तं भवति-यस्या द्वयोरप्यर्द्धयोः प्रथमगणत्रयापेक्षया न्यूनाऽधिका वा पदविरतिः सा सर्वतो विपुला, यस्याः पुनः प्रथमार्द्धावतार्येव विपुलालक्षणं सा मुखविपुला, पश्चिमार्द्धावतारिणि वाऽस्मिन्नेव जघनविपुलेति गाथार्थः ॥११॥

पढमद्धे छट्ठंसो होइ दुगप्पो जहेव गाहाए ।
तह बीयद्धे वि भवे सड्डिमत्तं भणंति तं गीई ॥१२॥

तं गीतिं भणन्तीति क्रियासम्बन्धः । यस्याः किमित्याह-**प्रथमार्द्धे** प्रतीते **षष्ठोंऽशको** भवति, **द्विकल्पो**, द्विप्रकारो, **यथैव गाथायां**-यथेति दृष्टान्तार्थमेव अवधारणे, गाथायां सामान्यलक्षणायां, **तथा** तेन प्रकारेण द्वितीयार्द्धेऽपि भवेत् सा षष्ठांशो विकल्पो मध्यगुरुश्चतुर्लघुको वा तामेवंलक्षणां गाथां षष्टिमात्रां द्वयोरप्यर्द्धयोः पृथग् त्रिंशन्मात्रत्वात्, **भणन्ति**, पूर्वस्तत्र यो गीतिं गीतमार्गोपयोगिनीं विद्वांस इति गाथार्थः ॥१२॥

गाहाबीयदले जह छट्ठंसो एगमत्तो उ ।
तह पढमद्धे वि भवे तं उवगीई भणंति बुहा ॥१३॥

गाथाद्वितीयदले द्वितीयार्द्धे, **यथा** येन प्रकारेण, **षष्ठोंऽशः** कल्प **एकमात्रो** लघ्वेकमात्रेत्यर्थः, तुरवधारणार्थस्**तथा प्रथमार्द्धेपि** यस्याः षष्ठ एकमात्रो भवेत्तामनन्तरोक्तलक्षणामुपगीतिं भणंति बुधाः-विद्वांस इति गाथार्थः ॥१३॥

गाहाए जत्थ पढमबीयदलाणं विवज्जासो ।
उग्गीई सा भणिया विरामअंसेहिं होइ पुव्वसमा ॥१४॥

यत्र यस्यां गाथायामुक्तलक्षणायां **प्रथमद्वितीयदलयोः विपर्यासो** व्यत्ययः, प्रथमार्द्धलक्षणं सप्तांशाश्चतुर्मात्रा अन्ते च गुरुरित्यादि तत्, द्वितीयार्द्धे

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

द्वितीयार्द्धलक्षणं च षष्ठ एकलघुरित्यादि, तच्च प्रथमार्द्धे भवति **उद्गीतिः** अभिधानमिति गाथा भणिता । किंविशिष्टा ? **विरामांशैर्भवति पूर्वसमा**-यथा सामान्यगाथायां षष्ठे चतुर्लघौ द्वितीयात्, सप्तमे प्रथमात्, द्वितीयार्द्धे तु पञ्चमे प्रथमात् पदपाठः; यथा च प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमेषु मध्यगुरुवर्जिताः शेषाश्चत्वारो गणस्तथा अत्राऽपीति गाथार्थः ॥१४॥

गाहसमा सत्तंसा चउमत्ता तह य अट्ठमो अंतगुरु ।
पढमद्धे तत्तुल्लं बीयंपि य खंधयं तमिह बिंति बुहा ॥१५॥

स्कन्धकं तमिह ब्रुवते बुधाः । यत्र किमित्याह-**गाथासमा**-सामान्यगाथा-तुल्याः सप्तेति-सप्तसंख्या अंशगणाः-कल्पा इति अर्थान्तरं । किंरूपाः ? **चतुर्मात्रास्तथा** चेति यथा सप्तमश्चतुर्मात्राश्चकारोप्यर्थे भिन्नक्रमश्च, तथाऽष्टमे पि चतुर्मात्र एव परमंतगुरुरन्ते गुरुर्यस्य स तथा । क्वेत्याह-**प्रथमार्द्धे** प्रतीत एव, न केवलं प्रथमार्द्धमेव एवंरूपं, किन्तु द्वितीयमपीत्याह **तत्तुल्यं** प्रथमार्द्धसमं **द्वितीयमप्यर्द्धं स्कन्धका**भिधानं **तच्छन्द इह** छन्दोविचारणायां **ब्रुवन्ति**-आचक्षते **बुधाः**-सुधिय इति गाथार्थः ॥१५॥

एवं सामान्यतो विशेषतश्च गाथालक्षणमभिधाय गाथायामेव परिमाणवर्ण-संख्याभेदपरिमाणं चाऽऽह-

सत्तावण्णा मत्ता गाहा तीसइ जाव पणपण्णा ।
वण्णा एक्कगवुड्ढा हवंति छव्वीसइं ठाणा ॥१६॥

सप्तपञ्चाशन्मात्रा यस्यां सा तथा **गाथा** भवतीति गम्यते । सप्त-पञ्चाशता मात्राभिः सामान्यतो गाथा निगद्यते इत्यर्थः । **त्रिंशतो** वर्णेभ्यश्चाऽऽरभ्य **यावत् पञ्चपञ्चाशत्** पञ्चभिरधिका पञ्चाशद् यावत् । किमित्याह-**वर्णा** अकारादयः । किंरूपाः ? **एकैकवृद्धा** एकोत्तरया वृद्ध्या वृद्धिमुपगता **भवन्ति**-वर्तते । कियत्सख्या(संख्यया) इत्याह-षड्विंशतिस्थानाः-षड्भिरधिका विंशतिः स्थानानि संख्याभेदा येषां ते तथा । इदमुक्तं भवति-यदा द्वयोः सर्वेऽपि गुरवो वर्णाः प्रयुज्यन्ते तदाऽपि प्रथमार्द्धे षष्ठस्य मध्यगुरुत्वेन, तल्लघुद्वयसम्भवात् । द्वितीयार्द्धे च षष्ठस्य एकलघुमात्रत्वात् त्रयो लघुवर्णा गुरवश्च सप्तविंशतिवर्णाः, एवं जघन्यतः त्रिंशद्वर्णाः, प्रतिगुरुमात्राद्वयभावेन चतुःपञ्चाशति मात्रासु लघुमात्रा-त्रयमीलने सप्तपञ्चाशन्मात्रा गाथायां भवन्ति । षड्विंशतौ गुरुषु पञ्चसु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघुष्वेकत्रिंशद्वर्णा एवमेकैकस्य हान्या लघुद्वयस्य च वृद्ध्या द्वात्रिंशदादयो यावदर्द्धद्वयान्तिमयोर्द्वयोः गुरुवर्णयोस्त्रिपञ्चाशति च लघुषु पञ्चपञ्चाशत् । गाथायामुत्कृष्टतो वर्णाः षड्विंशतिश्च वर्णस्थानानि सप्तपञ्चाशत्वमात्रा सर्वत्र भवतीति गाथार्थः ॥१६॥

लघुभ्य उक्तवर्णस्थाना वर्णस्थानेभ्यश्च लघुवर्णानामानयनाय करणमाह–

तियहीणलहूणऽद्धं तीसजुयं होइ वण्णपरिमाणं ।
तीसाहियं ति दुगुणं तिज्जुय लहुयक्खरपमाणं ॥१७॥

त्रिकेण हीनास्ते च ते लघवश्च **त्रिकहीना लघवस्तेषामर्द्धं** दलं, किमित्याह–**भवति**–वर्तते **वर्णपरिमाणं** वर्णसंख्या । किंविशिष्टं ? **त्रिंशदन्यूनं**–(?**युतं**) त्रिंशता समेतं । किमुक्तं भवति ? सर्वजघन्येनाऽपि गाथायां त्रयो लघवस्तेषु चाऽपनीतेषु अनवशिष्टत्वेन दलाभावस्तत्र च शून्यस्थाने त्रिंशन्निक्षिप्यते । एवं त्रिषु लघुषु त एव त्रिंशद्वर्णाश्चत्वारश्च लघवो न सम्भवत्येव, त्रिकहीनेष्व–वशिष्टद्वयस्यार्द्धे एकत्रिंशद्योगे एकत्रिंशद्वर्णा । एवं सप्तसु लघुषु द्वात्रिंशत्, नवसु त्रयस्त्रिंशतौ त्रिंशन्मीलने गाथायामुत्कृष्टतः पञ्चपञ्चाशद्वर्णास्त्रिंशदधि–कामङ्कत्रिंशदादिषु वर्णस्थानेष्वेकद्व्यादिपञ्चविंशतिपर्यन्तवर्णपरिमाणं, तु विशेषणार्थो भिन्नक्रमश्च योक्ष्यते । किंविशिष्टं ? **द्विगुणं**–द्वियुतं । किं भवतीत्याह–**लहुयक्खरपमाणं**, पुनरिदमुक्तं भवति । लघ्वक्षरपरिमाणं पुनरित्थं–त्रिंशतो वर्णेभ्यो यदधिकमक्षरपरिमाणं, यथैकत्रिंशतिवर्णेष्वेको वर्ण स द्विगुणो द्वौ त्रिभिर्योगे पञ्चलघून्यक्षराणि यद्विंशतिश्च गुरूणि; एवं यावत् पञ्चपञ्चाशतिवर्णेषु त्रिंशतो अधिकायां पञ्चविंशतौ द्विगुणायां पञ्चाशति त्रिभिर्योगे त्रिपञ्चाशल्लघूनि द्वे च गुरुणी अक्षरे भवत इति गाथार्थः ॥१७॥

उक्तं लघुवर्णेभ्यः सामान्यतो वर्णपरिमाणं–वर्णेभ्यश्च लघ्वक्षरपरिमाणं । साम्प्रतं मात्राभ्यां गुरुवर्णानां सामान्यवर्णानां पुनरपि भंग्यन्तरेण गुरुवर्णानां च प्रमाणानयनायकरणमाह–

मत्ता अक्खररहिया गुरवो चत्ता य हुंति गुरुहीणा ।
लहुयक्खरेहिं हीणा सेसद्धे होंति गुरुवण्णा ॥१८॥

मात्राः सामान्यतो गाथायां किल सप्तपञ्चाशत् । किमित्याह–**गुरवो**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुवर्णपरिमाणा भवन्ति । किंविशिष्टा ? **अक्षररहिता** अक्षरैर्वर्णै रहिता, गाथायां यावन्तो वर्णास्तै रहिता, यथोत्कर्षतो गाथायां पञ्चपञ्चाशतिवर्णेषु सप्तपञ्चाशतो मात्रापरिमाणादपनीतेष्ववशिष्टे जघन्यतो द्वे गुरुणी अक्षरे भवतः । यदा वर्ण एव मात्राः सप्तपञ्चाशत्परिमाणा गुरुहीना गुर्वक्षरप्रमाणहीनाः क्रियन्ते तदा वर्णवन्न परिमाणं न भवन्ति । चकारः समुच्चये । यथा क्वचित् गाथायां सप्तविंशंति-गुरवस्तेषु च सप्तपञ्चाशतोऽपनीतेषु शेषाः त्रिंशत्, तावन्तश्च तत्र वर्णा इति । **लघ्वक्षरैः** लघुवर्णैः **हीना** मात्रा इत्यनुवर्तते । ततश्च लघ्वक्षरापनयने यच्छेषमवशिष्टं मात्रापरिमाणं तदर्द्ध प्रतीत एव । किमित्याह-**गुरुवर्णा** भवन्तीति गम्यते । यथा क्वचिद् गाथायां त्रीणि लघुन्यक्षराणि मात्रापरिमाणात् तदपनयने चतुःपञ्चाशत् तस्या अप्यर्द्धे सप्तविंशतिस्तावन्तश्च गुरुवर्णाः । एवं गीत्युपगीत्योरपि स्वमात्रापरिमाणानुसारेण भावना कार्या इति गाथार्थः ॥१८॥

साम्प्रतं किञ्चित् सामान्यगाथालक्षणविलक्षणत्वेन पृथगेव स्कन्धकगाथायां मात्रापरिमाणं वर्णस्थानपरिमाणं चाऽऽह-

चउसट्ठी मत्तावण्णा चउतीसाइ जा दुसहिया सट्ठी ।
लहुयद्ध[दु]तीसजुया वण्ण खंधियए सया विण्णेया ॥१९॥

चतुःषष्टिर्मात्राः स्कन्धके स्कन्धकच्छन्दसि भवन्तीति गम्यते । अष्टानां चतुर्मात्राणां अंशकानां प्रत्येकमर्द्धद्वयेपि तावद् वर्णस्थानानि चतुस्त्रिंशदादीनि पर्यवसानमाह-यावद् द्विसहिता षष्टिपर्यन्तानीत्यर्थः । यतोऽत्रोत्कृष्टतस्त्रिंशत् गुरूणि तेषु चाऽर्द्धद्वयेऽपि षष्ठस्य पृथग् गुरुमध्यतो लघुचतुष्टयसम्भवात् । जघन्य-तश्चतुस्त्रिंशत्वर्णा एकमेकैकगुरुवर्णहानौ लघुद्वयवृद्धौ च, यावद् द्वाषष्टौ वर्णेषु द्वौ गुरू षष्टिश्च लघव इत्येकोनत्रिंशद्बलस्थानानि, चतुस्त्रिंशतो द्वाषष्टिस्थाने, एतत् संख्यापूरणे । **लघ्वर्द्धा** लघ्वर्द्धपरिमाणा **द्वात्रिंशद्युता वर्णाः स्कन्धके सदा** स्कन्धकलक्षणस्याऽविसम्वादित्वात् अविचलत्वेन सर्वकालं विज्ञेया ज्ञातव्याः । इदमुक्तं भवति-लघुभ्यो वर्णपरिमाणोन्नयने इदं करणं यावन्ति लघून्यक्षराणि तत्र दृश्यन्ते तेषामर्द्धं द्वात्रिंशद्युतं वर्णपरिमाणं । यथोत्कर्षतः षष्टिप्रमाणेषु । लघुष्वर्द्धीकृतेषु त्रिंशति द्वाविंशति क्षेपे च द्वाषष्टिवर्णा भवन्तीति गाथार्थः ॥१९॥

इदानीमंशकविकल्पवशात् गाथोद्गीतिस्कन्धकगीत्युपगीतिचपलानां प्रत्येक, प्रस्तारप्रमाणं विवक्षुः गाथात्रयमाह-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरस अंस वियप्पा जहसंभवमिह परोप्परं गुणिया ।
वीससहस्सा एगूण वीसलक्खद्धकोडीउ ॥२०॥

इह गोथोद्गीत्योः **त्रयोदश अंशकाश्चतुर्मात्रास्तत्र** गाथायां प्रथमार्द्धे सप्त द्वितीयार्द्धे तु षष्टिपर्यायेण चोद्गीतौ तत्र प्रथमतृतीये पञ्चमसप्तमाः प्रथमार्द्धे मध्यगुरुकल्परहिताः प्रत्येकं चतुर्विकल्पाः । द्वितीयार्द्धेऽपि एवमेव । इत्येवमेतौ द्वितीय-चतुर्थौ चाऽर्द्धद्वयेऽपि प्रत्येकं पञ्च विकल्पा चैवमेते सर्वे चत्वारः षष्ठाङ्कश्च गाथायां प्रथमे अर्द्धे उद्गीतौ च द्वितीये द्वे विकल्पाः, ततो अष्टौ चतुष्काः, चत्वारः पञ्च द्विकं चेति । तत्र चतुष्टाङ्कस्य परस्परगुणने पञ्चषष्टिसहस्राणि पञ्चशतानि षट्त्रिंशच्च, पञ्चकचतुष्कस्य तु षट्शतानि पञ्चविंशत्यधिकानि परस्परगुणने भवन्ति । ततोऽनेन राशिना पूर्वस्मिन्नसौ गुणितो अन्यतरार्द्धे षष्ठांशस्य द्विविकल्पत्वेन पुनरपि द्विगुणित इदं प्रस्तारप्रमाणं भवति । यथा विंशतिसहस्राणि एकोनविंशतिर्लक्षा अष्टो कोटय इति, अत एवाह-

पत्थारमाणमेयं गाहुग्गीईण खंधएट्ठगुणं ।
दुगुणं दुगुणं गीईए अद्धयं होई ॥२१॥

प्रस्तारमानं रचनापरिमाणमेतदनन्तरोक्तमङ्कतोपि ८,१९,२०,००० कयोरित्याह-गाथोद्गीत्योः स्कन्धकेऽष्टगुणं प्रस्तारमानमेतदिति वर्तते । यतोऽत्र द्वितीयार्द्धेपि षष्ठोंऽशो द्विविकल्पो दलद्वये अष्टमौ च, एवं च ये द्विकास्ते च परस्परगुणिता अष्टावेतद्गुणश्च पूर्वराशिः स्कन्धकप्रमाणं भवति । तच्चैतत् षष्टिसहस्राणि त्रिपञ्चाशल्लक्षाः पञ्चषष्टिकोटय इति । अङ्कतोऽपि ६५,५३,६०,००० । यथोक्तम्-

पणसट्ठीकोडीउ लक्खा तेवण्ण सट्ठिसहस्साइं ।
पत्थारमाणमेयं खंधयगाहाए बिंति मुणी ॥

द्विगुणं गीत्यां सामान्यगाथाप्रस्तारप्रमाणं । द्वितीयार्द्धेपि षष्ठांशकस्य द्विविकल्पकत्वात् । तच्चेदं-चत्वारिंशत्सहस्राः अष्टात्रिंशल्लक्षाः षोडशकोटयो अङ्कतोऽपि १६,३८,४०,००० । एतदेव चोक्तसन्नीत्यामर्द्धकमर्द्धरूपं भवति । अत्र प्रथमार्द्धेपि षष्ठांशस्यैव मात्रत्वात् । तच्च षष्टिसहस्राः नवलक्षाः चतस्रः कोटयः इति अङ्कतोऽपि ४,०९,६०,००० । इति गाथाद्वयार्थः ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोलक्खऽडयालीससया मुहजघणचवलाण पत्तेयं ।
पंचसयबारसोत्तरपत्थारो उभयचवलाए ॥२२॥

द्वे लक्षे अष्टचत्वारिंशच्च सहस्राणि मुखजघनचपलयोः, चपलाशब्दस्य प्रत्येकभिसम्बन्धात् मुखचपला-जघनचपलायाश्च **प्रत्येक**मिति पृथक् प्रस्तार इति सम्बध्यते । अत्र हि मुखचपलायां द्वितीयचतुर्थौ मध्यगुरू अविकल्पावेव, एतौ च गुरुमध्यगौ कर्त्तव्याविति । प्रथमो द्विगुरुरन्तगुरुर्वा तृतीयो द्विगुरुरेव तद्भावे हि तस्य द्वितीयचतुर्थयोः गुरुमध्यगत्वं । पञ्चमोऽप्यादिगुरुत्वेन द्विगुरुत्वेन वा द्विविकल्पः, षष्ठः प्रतीत एव, सप्तमोऽपि चतुर्विकल्प इति त्रयाणां द्विकानां चतुष्कस्य च परस्परगुणने याता द्वात्रिंशद्विकल्पास्ततो द्वात्रिंशता सामान्यगाथा-पश्चिमार्द्धविकल्पानां चतुःषष्ट्यंशप्रमाणानां गुणने यथोक्तं **प्रस्तारप्रमाणं** मुखचपलाया भवति । एतदेव द्वितीयार्द्धवतारिणि चपलालक्षणे षष्ठस्यैकमात्रत्वादविकल्पकत्वे द्वयोर्द्विकयोश्चतुष्केन गुणने यातैः षोडशभिर्विकल्पैर-विशेषगाथाप्रथमार्द्धे विकल्पानां अष्टशताधिकद्वादशसहस्रप्रमाणानां गुणने जघनचपलायाः प्रस्तारप्रमाणं भवति **पञ्चशतानि द्वादशोत्तराणि** ५१२ । विभक्तिलोपः प्राकृतत्वात् **प्रस्तारः**-प्रस्तारप्रमाणं कस्या इत्याह-**उभयचपलायाः** सर्वतश्चपलाया इत्यर्थः । उभयार्द्धावतारिणि हि चपलालक्षणे प्रथमार्द्धे द्वात्रिंशदुत्तरार्द्धे च षोडशविकल्पा, द्वात्रिंशतः षोडशभिर्गुणने यथोक्तं प्रमाणं भवतीति गाथार्थः ॥२२॥

अधुना प्रकरणमुपसंहरन् तस्य प्रयोजनं विशेषो(षं) प्रयोगं कर्त्तारं च वक्तुकाम आह-

गाहाजाइसमासो छन्दोजइगुरुलहूण छेयत्थं ।
पाइयसत्थवत्थुवओगी जिणेसरसूरिणा रइओ ॥२३॥

गाथाजातीनां पथ्या-विपुला-चपलादीनां **समासः**-संक्षेपो **गाथाजातिसमासः** तत्प्रतिपादकत्वात् प्रकरणमपि तथोच्यते इति । **जिनेश्वरसूरिणा रचित** इति सम्बध्यते । किमर्थमिथ्याह-**छन्दोयतिगुरुलघूनां छेदार्थं**, छेदः - परिच्छेदः परिज्ञानमिति यावत् । केषां ? छन्दोयतिगुरुलघूनां छन्दश्च गाथाछन्द एवं सामान्यतो विशेषश्च तत्रैव विरामो लघुश्च-लघ्वक्षरं गुरुश्च-गुर्व्वक्षरमेव, ततस्तेषामयं विरामस्तस्य यथा परिच्छेदो भवति तथा दर्शितमेव । प्राकृतं च-तत्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतभाषानिबन्धनत्वात् शास्त्रं च-प्रतिविशिष्टार्थशासनात् प्रतीतमेव । प्राकृतशास्त्रे उपयोगो-व्यापारः सो अस्यास्तीति उपयोगी प्राकृतशास्त्रे उपयोगी **प्राकृत-शास्त्रोपयोगी**। तुः पूरणार्थो । जिनेश्वरसूरिणेति कर्तुर्नामनिर्देशो रचितः- कृत इति गाथार्थः ॥२३॥

अजितश्रावकोत्साहादेतच्छन्दोनुशासनम् ।

व्यावृणोन्**मुनिचन्द्राख्य-सूरिः** श्वेताम्बरप्रभुः ।

इति श्रीजिनेश्वराचार्यविरचित-छन्दोनुशासनविवरणं समाप्तम् ।

कृतिः श्रीमुनिचन्द्रसूरीणाम् ।

प्रत्यक्षरगणनया श्लोकमानं २४३ ।

[राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, जेसलमेर ग्रन्थोद्धार योजना फोटोकॉपी नं. २३१, प्लेट ७ पत्र १३] ताडपत्रीय प्रति-लेखनकाल १२वीं.

C/o. प्राकृत भारती अकादमी
13-A. मेन मालवीय नगर,
जयपुर ३०१०१७

[नोंध : सम्पादक महोदयने 'छन्दोनुशासन' का मेटर जैसा भेजा वैसा कम्पोझ हुआ । प्रूफ-वाचन के दौरान काफी क्षतियां नजर में आई, जो बहुतायत लेखनदोष के वजहसे हुई मालूम पडी, और जिनको सुधारने के लिए मूल हस्तप्रति का होना अनिवार्य है, अतः हमने हमारी अल्पमति के अनुसार जितना खयाल आया, वैसा सुधारा है । शुद्धप्राय वाचना की प्रतीक्षा करेंगे ।

— शी.]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org